**ओ३म्**

**‘संस्कृत व इतर भाषाओं का अध्ययन और महर्षि दयानन्द’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन काल (1825-1883) वा मुख्यतः 10 अप्रैल, 1875 को आर्यसमाज की स्थापना के बाद देश के अनेक लोगों से पत्रव्यवहार किया था। उनके पत्रों का संग्रह व प्रकाशन का मुख्य श्रेय स्वामी श्रद्धानन्द, पं. भगवद्दत्त रिसर्च स्कालर, महामहोपाध्याय पं. युधिष्ठिर मीमांसक एवं महाशय मामराज जी को है। सम्प्रति उनका उपलब्ध समस्त पत्रव्यवहार पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी द्वारा सम्पादित होकर आर्यजगत के प्रसिद्ध **‘रामलाल कपूर न्यास, सोनीपत’** से चार खण्डों में उपलब्ध है। इस पत्र और विज्ञापन के दूसरे भाग से मह दयानन्द का 23 मई 1881 को फरूर्खाबाद के सेठ निर्भयराम जी को लिखा गया पत्र प्रस्तुत कर रहे हैं। वह लिखते हैं – **‘सेठ निर्भयराम जी आनन्दित रहो। यह पत्र उपसभा (मीमांसा उपसभा, फरूर्खाबाद) में सब लोगों को सुना देंवे। मुंशी कालीचरण रामचरण जी के पत्र से विदित हुआ कि आप लोगों की पाठशाला में आर्यभाषा संस्कृत का प्रचार बहुत कम और अन्य भाषा अंग्रेजी वा उर्दू फारसी अधिक पढ़ाई जाती है। इससे वह अभीष्ट जिसके लिए यह शाला खोली गई है, सिद्ध होता नहीं दीखता। वरन आपका यह हजारहा (हजारों) मुद्रा का व्यय संस्कृत की ओर से निष्फल होता भासता है। हम ने कभी परीक्षा के कागजात वा आज तक की पढ़ाई का फल कुछ नहीं देखा। आप लोग देखते हैं कि बहुत काल से आर्यावर्त्त में संस्कृत का अभाव हो रहा है। वरन् संस्कृतरूपी मातृभाषा की जगह अंग्रेजी लोगों की मातृभाषा हो चली है। अंग्रेजी का प्रचार तो जगह-जगह सम्राट की ओर से जिनकी यह मातृभाषा है भले प्रकार हो रहा है। अब इसकी वृद्धि में हम तुमको इतनी आवश्यकता नहीं दीखती। और न सम्राट के सामने कुछ कर सकते हैं। हां, हमारी अति प्राचीन मातृभाषा संस्कृत जिसका सहायक वर्तमान में कोई नहीं है। और यही व्यवस्था देखकर संस्कृत के प्रचारार्थ आप लोगों ने यह पाठशाला स्थापित की है। तो यह भी उचित कर्तव्य अवश्य है कि सदैव पूर्व इष्ट के सिद्धि पर दृष्टि रक्खी जावे। अब इस के साधनार्थ यह होना चाहिये कि कुल पठन पाठन समय के छः घण्टों में 3 घण्टे संस्कृत 2 घण्टे अंग्रेजी और 1 घण्टा उर्दू फारसी पढ़ाई जाया करे। और प्रति मास संस्कृत की परीक्षा अन्य पण्डितों के द्वारा हुआ करे। और वे प्रश्नोंत्तरों के कागजात हमारे पास भेजे जाया करें। अभी तक कुछ फल संस्कृत में इस शाला से नहीं लगा। सो इस लिये ऊपर जो कुछ लिखा गया उसको वर्त्ताव में लाओ तो अपने अभीष्ट के सिद्धि होने की आशा कर सकते हैं। किधिकं सुज्ञेषु। xxx -दयानन्द सरस्वती (अजमेर) ज्येष्ठ कृष्ण 11 सं. 1938/ता. 23 मई 1881 ई.।’**महर्षि दयानन्द लिखित यह पूरा पत्र साप्ताहिक आर्य सन्देश, दिल्ली के 22 फरवरी, 2015 अंक में प्रकाशित हुआ है। इस पर हमारे एक विद्वान मित्र ने हमें टिप्पणी करने को कहा है।

**eueksgu dqekj vk;Z**

 हम समझते हैं कि महर्षि दयानन्द जी का यह पत्र उनके संस्कृत प्रेम को प्रदर्शित करने के साथ पाठशाला में संस्कृत की उपेक्षा पर आंसू बहा रहा है जो उनके पत्र में लिखित आगामी शब्दों से प्रकट हो रहा है - **‘मुंशी कालीचरण रामचरण जी के पत्र से विदित हुआ कि आप लोगों की पाठशाला में आर्यभाषा संस्कृत का प्रचार बहुत कम और अन्य भाषा अंग्रेजी वा उर्दू फारसी अधिक पढ़ाई जाती है। इससे वह अभीष्ट जिसके लिए यह शाला खोली गई है सिद्ध होता नहीं दीखता। वरन आपका यह हजारहा (हजारों) मुद्रा का व्यय संस्कृत की ओर से निष्फल होता भासता है। हम ने कभी परीक्षा के कागजात वा आज तक की पढ़ाई का फल कुछ नहीं देखा।’**महर्षि की इन पंक्तियों में अंग्रेजी व उर्दू को संस्कृत से अधिक पढ़ाये जाने के विरोध का स्वर भी सुनाई दे रहा है। वह यहां कह रहे हैं कि पाठशाला पर जो हजारों रूपयों का व्यय किया जा रहा है वह संस्कृत को यथोचित महत्व न दिये जाने से निष्फल प्रतीत होता है। वह यह शिकायत भी कर रहे हैं कि पढ़ने वाले बालकों की परीक्षा की उत्तर पुस्तिकायें भी उनको नहीं दिखाई गईं हैं और न पाठशाला में जो पढ़ाई हो चुकी है उसका कोई अनुकूल फल ही उनको दिखाई दिया है। बहुत काल से आर्यावर्त्त में संस्कृत के अभाव के प्रति वह आगाह कर रहें हैं। इस अभाव को दूर करने की उनकी भावना व इच्छा है और उसके पूरा न होने से वह दुःखी हैं। वह इस बात से भी दुःखी हैं कि संस्कृत को मातृभाषा होना चाहिये परन्तु उसका यह स्थान अंग्रेजी ने छीन लिया है। वह कहते हैं कि अंग्रेजी का प्रचार तो जगह-जगह सम्राट की ओर से जिनकी यह मातृ भाषा है भले प्रकार से हो रहा है। पत्र के इस वाक्य मे अंग्रेजी की पढ़ाई वैदिक पाठशाला में कराये जाने की वह आवश्यकता अनुभव नहीं करते। वह कहते हैं कि वह तो संम्राट व अंग्रेजों की ओर से की ही जा रही है। अपनी इस भावना को उन्होंने अपने इन शब्दों में प्रकट किया है - **‘अब इसकी वृद्धि में हम तुमको इतनी आवश्यकता नहीं दीखती। और न सम्राट के सामने कुछ कर सकते हैं।’**इसमें वह अंग्रेजों का राज्य होने के कारण अपनी सुस्पष्ट शब्दों व खुलकर अपनी बात को कहने में संकोच करते प्रतीत होते हैं क्योंकि ऐसा करने पर अंग्रेजों की ओर से उनके आन्दोलन में रूकावट आने का भय है।

 आगे वह कहते हैं कि **‘हां, हमारी अति प्राचीन मातृभाषा संस्कृत जिसका सहायक वर्तमान में कोई नहीं है। और यही व्यवस्था देखकर संस्कृत के प्रचारार्थ आप लोगों ने यह पाठशाला स्थापित की है। तो यह भी उचित कर्तव्य अवश्य है कि सदैव पूर्व इष्ट के सिद्धि पर दृष्टि रक्खी जावे।‘** यहां वह संस्कृत के प्रचार व अध्ययन-अध्यापन में अंग्रेज सरकार से किसी प्रकार का सहयोग न मिलने व सनातन धर्मी हिन्दुओं द्वारा भी संस्कृत के प्रचार में उदासीन रहने पर अपनी पीड़ा व्यक्त कर रहे हैं। वह कहते हैं कि इसी कारण उनकी प्रेरणा से श्री निर्भयराम जी व अन्य लोगों ने संस्कृत की पाठशाला स्थापित की थी जो अपने उद्देश्य से भटक गई है। इसलिये वह प्रेरणा कर रहे है कि अपने उद्देश्य को सामने रखकर उसकी पूर्ति के लिए प्रयास व पुरूषार्थ किया जाना उचित है अन्यथा संस्कृत के स्थान पर अंग्रेजी व उर्दू के पठन-पाठन से कोई लाभ नहीं है। यह साधनों का अपव्यय है। संस्कृत पर उचित ध्यान दिये जाने के लिए इन वाक्यों में उनकी प्रेरणा के साथ उनका आदेश भी दृष्टिगोचर हो रहा है।

हमें प्रतीत होता है कि पाठशाला में अंग्रेजी व उर्दू पढ़ाने की व्यवस्था महर्षि दयानन्द की इच्छा व सलाह से न कर पाठशाला के सहयोगी व सक्रिय लोगों के निर्णय का परिणाम था। महर्षि ने अनुभव किया होगा कि उनका अंग्रेजी व उर्दू का अधिक विरोध पाठशाला को बन्द कर-करा सकता है। अतः उन्होंने संस्कृत के दूरगामी हित को देखते हुए पत्र में यह शब्द लिखे कि **‘अब इस के साधनार्थ यह होना चाहिये कि कुल पठन पाठन समय के छः घण्टों में 3 घण्टे संस्कृत 2 घण्टे अंग्रेजी और 1 घण्टा उर्दू फारसी पढ़ाई जाया करे। और प्रति मास संस्कृत की परीक्षा अन्य पण्डितों के द्वारा हुआ करे। और वे प्रश्नोत्तरों के कागजात हमारे पास भेजे जाया करें।‘** इन पंक्तियों में वह संस्कृत को 6 घण्टों में से 3 घंटे का समय देकर संस्कृत के प्रति अपने मनोभावों को उजागर करते हैं। संस्कृत को प्राथमिकता और उसके उन्नयन के लिए वह निर्देश देते हैं कि प्रश्नोत्तरों के कागजात उनके पास भेजे जाया करें। इसका अर्थ है कि वह देखेंगे कि पाठशाला में अध्ययन करने वालों को भलीप्रकार से संस्कृत का अध्ययन कराया जा रहा है या नहीं। यदि नहीं तो वह आवश्यक निर्देश जारी कर सकेंगे। अंग्रेजी व उर्दू के लिए उन्होंने क्रमशः 2 व 1 घण्टे का अध्ययन कराने का प्रस्ताव किया है जबकि पहले अधिक समय दिया जाता था, यह अनुमान होता है। इसलिए उनकी प्राथमिकता तो संस्कृत ही है। वह यह भी जानते थे कि संस्कृत सीखने वाला व्यक्ति अधिक अच्छी हिन्दी जान सकता है जिसे अलग से पढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। यदि वह अंग्रेजी व उर्दू की पढ़ाई बन्द कराते तो शायद पाठशाला के कुछ बच्चे पढ़ना ही छोड़ देते और अंग्रेजों की नजरें भी उनके प्रति तिरछी हो सकती थीं। अतः उन्होंने नीति से काम लिया। पत्र के अन्त में वह स्पष्ट करते हैं कि अभी तक पाठशाला से संस्कृत अध्ययन को कुछ लाभ नहीं हुआ। अपने पत्र में निहित निर्देशों का पालन करने के लिए वह परामर्श देते हैं तभी अभीष्ट व उद्देश्य का पूरा होना सम्भव बताते हैं। महर्षि दयानन्द के इस पत्र से यही प्रकट हो रहा है कि वह संस्कृत के सर्वोपरि पक्षधर है। संस्कृत के मूल्य पर इतर भाषाओं अंग्रेजी व उर्दू को पढ़ाया जाना उन्हें स्वीकार्य नहीं है। हां, संस्कृत की प्रमुखता के साथ अन्य भाषाओं का अध्ययन किया जा सकता है पर उनकी अनिवार्यता पर उनके विचार न होने से अन्य भाषाओं का अध्ययन उन्हें अभिमत नहीं था।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास में पठन-पाठन विधि पर विस्तार से अपने विचार प्रकट किये हैं। इस अध्याय का अध्ययन करने पर लगता है कि वह आर्ष संस्कृत व्याकरण अर्थात् अष्टाध्यायी-महाभाष्य-निरूक्त व्याकरण का अध्ययन कराने के साथ संस्कृत के उत्तोत्तम ग्रन्थों एवं वेद, दर्शन, उपनिषद आदि के अध्ययन के पक्षधर थे और अनेक अनारर्ष संस्कृत व्याकरणएवं अन्य जाल ग्रन्थों के विरूद्ध भी थे। प्रत्येक लेखक जानता है कि वह पुस्तक में जो लिखता है उसे देश-देशान्तर के सभी लोग देखते व पढ़ते हैं इसलिये अपने उस ग्रन्थ में वह अपना आशय खुल कर प्रकट करता है। जिन विषयों का उसे विरोध करना होता है, यदि उससे उसके मिशन व आन्दोलन में बाधा की सम्भावना हो, तो वह प्रायः मौन रहता है। सत्यार्थ प्रकाश से अंग्रेजी व उर्दू आदि भाषाओं के अध्ययन का समर्थन नहीं होता, अतः इससे उनका आशय प्रकट हो जाता है। महर्षि दयानन्द की दृष्टि में संस्कृत का स्थान सर्वोपरि था तथा उसके पश्चात हिन्दी का था। अन्य भाषाओं का स्थान इन दोनों भाषाओं के बाद माना जा सकता है और उनका अध्ययन विद्यार्थियों के लिए स्वैच्छिक कह सकते हैं। हम समझते हैं कि महर्षि दयानन्द के पत्र में प्रस्तुत विचारों से संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन का समर्थन तो पुरजोर होता है परन्तु अंग्रेजी व उर्दू का समर्थन नहीं होता। हां, तत्कालीन परिस्थितियों के कारण उन्होंने अपने पत्र में उसका विरोध न कर उनका अध्ययन बन्द कराने का परामर्श नहीं दिया परन्तु संस्कृत की तुलना में उनके अध्ययन का समय कम अवश्य किया था। उपर्युक्त पत्र की पृष्ठ भूमि में महर्षि दयानन्द का जो मन्तव्य हमें प्रतीत हुआ, उसे हमने प्रकट किया है। हमारा विचार है कि प्रत्येक वैदिक धर्मी को पत्राचार आदि किसी प्रकार से संस्कृत का अध्ययन अवश्य करना चाहिये। यदि सभी आर्यसमाजों में संस्कृत अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था हो और वह इसका पुरजोर प्रचार करें तो महर्षि दयानन्द का स्वप्न पूरा किया जा सकता है।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**